अध्याय–10

राजस्थान की मूर्तिकला व मन्दिर स्थापत्य

राजस्थान में मूर्तिकला एवं मंदिर स्थापत्य का इतिहास काफी प्राचीन एवं समृद्ध रहा है। मूर्तिकला एव मंदिर स्थापत्य कला एक दूसरे से घनिष्ट रूप से अन्तर्सम्बन्धित है। इन दोनों ही कला क्षेत्रों का विकास धार्मिक भावनाओं के मार्गदर्शन में सांस्कृतिक विशिष्टताओं के अलंकरण के साथ हुआ।

मूर्तिकला की दृष्टि से विकास के क्रम में प्रारम्भिक स्वरूप आज से लगभग 4500 वर्ष पहले के कालीबंगा क्षेत्र (जिला हनुमानगढ) से प्राप्त हुए हैं। उदयपुर के पास आहड़ सभ्यता की खुदाई में भी कालीबंगा के समान खिलौने जैसी आकृतियाँ प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त बनास नदी घाटी सभ्यता से प्राप्त मूर्तिशिल्पों में भी प्राचीन नदी घाटी सभ्यता की कलागत विशेषताएं देखने को मिलती हैं। इन क्षेत्रों से मुख्यतः मिट्टी व धातु की बनी हुई छोटी मूर्तियाँ मिली है।

मौर्य एवं मौर्य के उत्तर काल में राजस्थान में मूर्तिकला के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई। टोंक जिले से कई मृण मूर्तियाँ एवं मुद्राएं प्राप्त हुई हैं जिनमें मातृदेवी, शिव पार्वती एवं खिलौने की आकृतियों के मूर्तिशिल्पों में सुन्दर भावाभिव्यक्ति हुई है। इन मूर्तिशिल्पों में वेशभूषा, आभूषणों व विभिन्न अंगों अद्भुत प्रकार से कलात्मक विशिष्टताओं को लिए हुए बनाया गया है।

शुंगकाल में राजस्थान की मूर्तिकला ने नवीन पथ का अनुसरण किया जिसमें जन सामान्य की रूचि व धार्मिक भावनाओं का प्रभाव रहा। इस काल में महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, कृष्ण, वासुदेव, वसुन्धरा आदि देवी देवताओं एवं फूल–पत्तों, जीव–जन्तुओं आदि विषय वस्तुओं को कलागत विशेषताओं के समावेश के साथ स्थापत्य (मन्दिर व स्तूप आदि)

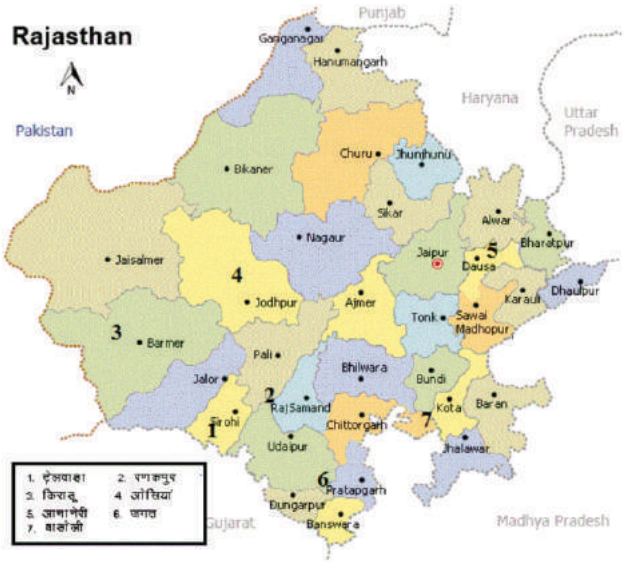

कला के अलंकरण में प्रयुक्त किया गया है। शुंगकालीन मूर्तिकला के प्रमुख क्षेत्रों में मध्यमिका, रंगमहल, नोह, नांद, मालवनगर, विराटनगर, लालसोट, सांगर, भांडपुर, नगर, सांभर, पीरनगर, अद्यापुर आदि शामिल किये जा सकते हैं।

मध्यमिका (चित्तौड़गढ़ के पास) बौद्ध व वैष्णव धर्म से सम्बन्धित विषयवस्तु को मूर्तिकला के माध्यम से जीवंत स्वरूप देने का प्रमुख स्थल रहा था।

रंगमहल से एकमुखी शिवलिंग, पशु, बेल–बूटें एवं स्त्री–पुरूष की विभिन्न आकृतियाँ मिली हैं। नोह (भरतपुर के पास) से यक्ष–यक्षी की प्रतिमाएँ व एक चतुर्मुख विशाल प्रतिमा प्राप्त हुई हैं। नांद (अजमेर के पास) से शिवलिंग की प्रतिमा प्राप्त हुई है, जिसके अधोभाग में वैष्णव देव परिवार का अंकन इसे विशिष्ट बनाता है। कुषाणकालीन अनेक बुद्ध व बौधिसत्व प्रतिमाएँ भरतपुर क्षेत्र में प्राप्त हुई हैं। गुप्तकाल में राजस्थानी मूर्तिकला पहले की अपेक्षा और अधिक समृद्ध हुई तथा यह

काल भारत के संदर्भ में मूर्तिकला का स्वर्ण युग कहा जाता है। इस काल के प्रमुख कला केन्द्रों में रंगमहल, भरतपुर, विराटनगर, कल्याणपुर, डूंगरपुर एवं रेड़ आदि उल्लेखनीय है। इन स्थानों से मुख्यतः शिव, विष्णु एव यक्षी आदि की प्रतिमाएं मिली हैं। गुप्तोत्तर काल की अनेक प्रस्तर की बनी हुई शिव प्रतिमाएं उपलब्ध हैं। इनका एक बड़ा संग्रह डूंगरपुर संग्रहालय में देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय संग्रहालय (नई दिल्ली) व विश्व के अन्य संग्रहालयों में भी ये प्रतिमाएं संग्रहीत है। मेवाड़ (उदयपुर) एवं वागड़ (डूंगरपुर, बांसवाड़ा) क्षेत्र इन प्रतिमाओं समृद्ध स्रोत रहे हैं। राजस्थान के प्राचीनतम तिथियुक्त मन्दिर के रूप में चन्द्रभागा (झालावाड़) का शीतलेश्वर महादेव का मन्दिर प्रसिद्ध है। मध्यकाल मूर्तिकला की दृष्टि से काफी समृद्ध रहा है। पूर्व मध्यकालीन (600 ई. से 800 ई.) एवं उत्तर मध्यकालीन (900 ई. से 1300 ई.) मूर्तिकला अपने चरमोत्कर्ष पर थी। इस समय के मन्दिरों में देव प्रतिमाएं विभिन्न स्वरूपों में शास्त्रानुसार परिकल्पना के साथ जीवंत हुई हैं। मध्यकालीन मूर्तिकला के केन्द्रों में आभानेरी, आबू, अटरू, किराडू, बाड़ोली, ओसियां, नागदा, चित्तौडगढ़ एवं सीकर आदि प्रमुख हैं। आभानेरी (जिला दौसा) स्थित हर्षतमाता के मन्दिर की मूर्तियां विशिष्ट मुद्राओं के लिए प्रसिद्ध है। अटरू (हाडौती क्षेत्र) के शिवमन्दिर की पार्वती की मूर्ति अत्यन्त सुन्दर व कलात्मक लक्षणों को लिए हुए है। जैन धर्म से सम्बन्धित प्रतिमाएँ नाडोल (पाली), लाडनू (नागौर) औसियाँ (जोधपुर), देलवाड़ा (सिरोही), रणकपुर (पाली), पल्लू (हनुमानगढ़), झालरापाटन (झालावाड़) केशवरायपाटन (बूंदी) आदि स्थलों पर सुन्दर रचना व अभिव्यक्ति के साथ देखी जा सकती हैं।

आधुनिक भारतीय (12वीं शताब्दी से अब तक) मूर्तिकला के युग में निर्मित कीर्तिस्तम्भ (चित्तौडगढ़) को भारतीय मूर्तिकला का शब्दकोष भी कहा जाता है। जगदीष मंदिर, उदयपुर में स्थित है जिसमें भगवान जगदीश की सुन्दर प्रतिमा स्थापित है। आमेर में जगत शिरोमणी मन्दिर एवं शिलादेवी मन्दिर स्थित है। शिलादेवी मन्दिर में पालयुगीन शिलादेवी की प्रतिमा है जिसे राजा मानसिंह बंगाल से लाये थे। नाथद्वारा में श्रीनाथजी, कांकरोली में द्वारिकाधीश, कोटा में मथुरेशजी, जयपुर में गोविन्ददेवजी एवं बीकानेर में रत्नबिहारी आदि मन्दिरों में देव प्रतिमाएँ स्थापित हैं।

मन्दिर स्थापत्य कला की दृष्टि से राजस्थान का उत्तरी भारत में महत्त्वपूर्ण स्थान है। सातवीं शताब्दी से पहले राजस्थान में जो मन्दिर बने थे उनके केवल अवशेष मात्र ही बचे हैं। इनके बाद सातवीं से दसवीं शताब्दी में यहाँ अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ तथा कई क्षेत्रीय शैलियों का विकास भी हुआ। आठवीं शताब्दी में गुर्जर–प्रतिहार क्षेत्रीय शैली का विकास हुआ, जिसके उदाहरणों में नीलकण्ठेश्वर मन्दिर (केकीन्द, मेड़ता) एवं सोमेश्वर मन्दिर (किराडू, बाड़मेर) आदि प्रमुख हैं। गुर्जर–प्रतिहार शैली से कुछ भिन्न मन्दिरों के रूप में अम्बिका माता मन्दिर (जगत, उदयपुर), सास–बहु का मन्दिर (नागदा, उदयपुर) एवं शिव मन्दिर (बाड़ोली, चित्तौडगढ़) आदि के नाम लिये जा सकतें हैं। दक्षिणी राजस्थान में स्थित इन मन्दिरों में शैलीगत तत्वों की विविधता व गुजरात का प्रभाव दिखाई देता है।

उत्तरमध्य कालीन राजस्थान के मन्दिर संख्या में अधिक तथा अलंकृत हैं। ये मन्दिर मारू–गुर्जर शैली में बने हैं। इस शैली के मन्दिरों के द्वार सजावटी, खम्भें अलंकृत तथा पीठिका ऊँची है। ओसियां का सचिया माता मन्दिर तथा चित्तौड़गढ का समिंधेश्वर मन्दिर आदि इसी प्रकार के उदाहरण हैं। राजस्थान में स्थित जैन मन्दिर वास्तुकला की दृष्टि से विश्व विख्यात हैं। इन जैन मन्दिरों का निर्माण जैन धर्म की पूजा पद्धति, मान्यताओं, भावनाओं एवं आदर्शों के समावेश के साथ हुआ है जो विशिष्ट तल विन्यास, संयोजन एवं अलंकरण की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं।

इन जैन मन्दिरों में देलवाड़ा के मन्दिर सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। रणकपुर, औसियाँ एवं जैसलमेर में स्थित जैन मन्दिर भी कलात्मक दृष्टि से उत्कृष्ट श्रेणी के हैं। अन्य उल्लेखनीय जैन मन्दिरों में धाणेराव एवं सेवादी (पाली), वर्माण (सिरोही), चाँदखेड़ी व झालरापाटन (झालावाड़), कशोरायपाटन (बूंदी) एवं श्रीमहावीर जी (करौली) आदि स्थानों के मन्दिर प्रमुख हैं।

देलवाड़ा :–

यह स्थान माउण्ट आबू (जिला सिरोही, राजस्थान) से लगभग 2) किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहाँ के जैन मन्दिर स्थापत्य कला एवं मूर्तिकला की दृष्टि से पूरे विश्व में प्रसिद्ध है। यहाँ पर पाँच मन्दिरों का समूह है। इस समूह के

पाँच मन्दिर – 1. विमलशाही मन्दिर, 2. लूणवसही मन्दिर, 3. पार्श्वनाथ या चौमुखा मन्दिर, 4. पीतलहर मन्दिर एवं 5. महावीर स्वामी मन्दिर हैं। विमलवसही मन्दिर एवं लूण वसही मन्दिर कलात्मक दृष्टिकोण से देलवाड़ा के शेष अन्य मन्दिरों से श्रेष्ठ हैं। इनका निर्माण 11वीं से 13वीं शताब्दी के दौरान गुजरात के सोलंकी शासकों के मंत्रियों द्वारा करवाया गया था।

देलवाड़ा के मन्दिरों में विषयवस्तु की दृष्टि से काफी विविधता देखने को मिलती है। कमल के पुष्पों, पंक्तिबद्ध सिंहों, नर्तक–वादक, हंस (पक्षी), यक्षिका, महाविद्या, गजलक्ष्मी, जैन श्रावक–श्राविका व कृष्ण लीला आदि विषयवस्तु को अद्भुत तरीके से मन्दिर के विभिन्न भागों में मूर्तिशिल्पों के रूप में जीवंत किया गया है। मन्दिर के गर्भगृह व अन्य स्थानों पर जैन तीर्थंकरों को प्रमुखता के साथ सम्मानपूर्वक एवं आध्यात्मिक भावनाओं के साथ अराध्य देव के रूप में स्थान मिला है। इन मन्दिरों में राजस्थान–गुजरात की सोलंकी (चालुक्य) शिल्पकला शैली के प्रमुखता से दर्शन होते हैं। यहाँ बेल–बूटे, जालियां, नक्काशीदार मेहराब, अलंकृत स्तम्भ एवं गुम्बद आदि दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र हैं। यहाँ जैन धर्म के साथ–साथ हिन्दू धर्म के पौराणिक आख्यानों का भी मूर्तन हुआ है। राग रागिनी, संगीतज्ञों, नर्तकियों, यक्ष–यक्षी एवं विद्या की देवियों का सौन्दर्यपूर्ण अंकन हुआ है। मन्दिरों के गर्भगृह में जैन तीर्थंकर आदिनाथ, नेमीनाथ, पर्श्वनाथ एवं महावीर स्वामी की मूर्तियाँ स्थापित हैं। मन्दिर की मूर्तियों में गोल एवं छोटा मुख तथा तीखे नयन नक्श का अंकन हुआ है। अलंकरणों की अत्यधिकता व आकृतियों की पुनरावृति को इन मन्दिरों की शिल्पकला के प्रमुख दोष के रूप से माना जा सकता है।

विमलशाही मन्दिर– देलवाड़ा में स्थित पाँच मन्दिरों के समूह में विमलशाही मन्दिर सबसे प्राचीन है। (चित्र संख्या–1)

चित्र संख्या–1 विमल शाही मंदिर

इसका निर्माण 1031ई. में गुजरात के सोलंकी शासक भीमदेव (प्रथम) के मंत्री विमल शाह ने करवाया था। इस मन्दिर को बनाने में उस समय लगभग 19 करोड़ रुपये खर्च हुए तथा 1500 शिल्पियों और 1200 श्रमिकों ने 14 वर्षों के अथक परिश्रम से इसे मूर्ति एवं शिल्प कला के एक उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में स्थापित किया। इसके निर्माण में प्रयुक्त संगमरमर के पत्थर को गुजरात में स्थित अम्बाजी से हाथियों पर लाद कर यहाँ लाया गया था। यह मन्दिर प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेव (आदिनाथ) को समर्पित है तथा गर्भगृह में आदिनाथ की सफेद संगमरमर से बनी प्रतिमा स्थापित है। यह मन्दिर अपनी अद्भुत अलंकृत नक्काशी एवं शिल्प कला की उत्कृष्टता से दर्शकों को आश्चर्य चकित करता है। इसे मुख्यतः तीन भागों में विभेदित किया जा सकता है। 1. गर्भगृह, 2. रंग मण्डप एवं 3. प्रदक्षिणा पथ।

इस मन्दिर के गर्भगृह में श्वेत संगमरमर से बनी प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ की (लगभग 2 मीटर ऊँची) प्रतिमा स्थापित है। इस प्रतिमा में तीर्थंकर को आसनस्थ मुद्रा में आध्यात्मिक ओज़ के साथ दर्शाया गया है। इस मूर्तिशिल्प में नासाग्र दृष्टि, श्रीवन्स चिह्न, अजानबाहु व कुन्तल केश विन्यास के साथ आध्यात्मिक भावनाओं का सुन्दर सम्मिश्रण किया गया।

मन्दिर के प्रदक्षिणापथ में 57 कोठरियाँ या देव कुलिकाएँ बनी हुई हैं। देव कुलिकाओं में विभिन्न तीर्थकरों की आकर्षक प्रतिमाएँ लगी हुई हैं। कुलिकाओं के सामने की छत दो–दो गुम्बदों के रूप में विभेदित है, जिनमें सुन्दर शिल्पाकृतियों का उत्कीर्णन किया हुआ है। इन शिल्पाकृतियों में सिंह, नर्तक–वादक, कमलपुष्प, गजलक्ष्मी, कृष्ण की जलक्रीड़ा एवं तीर्थंकरों के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं आदि को जीवन्तता के साथ संजोया गया है। प्रदक्षिणापथ में महामानसी, रोहिणी, अप्रतिचक्रा, सरस्वती एवं महालक्ष्मी आदि की प्रतिमाएँ भी विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। अष्टभुजाकार एवं आठ मीटर व्यास वाला रंगमडप इस मन्दिर का सबसे अधिक अलंकृत कलात्मक एवं आकर्षक भाग है। इसका निर्माण 1149 ई. में पृथ्वीपाल ने करवाया था। इसकी छत 6.6 मीटर के गोलाकार गुम्बद के रूप में बनी है। यह गुम्बद 12 अलंकृत स्तम्भों एवं तोरणों पर आश्रित है। गुम्बद में हाथियों,

चित्र संख्या–2 अलंकरण (देलवाड़ा)

हंसों, अश्वों एवं नर्तकों आदि आकृतियों के ग्यारह संकेन्द्रित वलय बने हैं। गुम्बद के केन्द्र में नीचे की ओर झूलती हुई स्थिति में झूमकों को उत्कीर्ण किया गया है। गुम्बद के परिधीय भाग में 16 महाविद्या देवियों को खड़ी हुई स्थिति में सुन्दरता के साथ साकार किया गया है। रंगमण्डप के स्तम्भों पर वाद्ययंत्र बजाते हुए नारियों को उत्कीर्ण किया गया है।

लूणवसही मन्दिर– इस मन्दिर का निर्माण गुजरात के सोलंकी राजा भीम देव द्वितीय के मंत्री वास्तुपाल एवं तेजपाल ने 1232 ई. में करवाया था। इसे बनाने में 2500 श्रमिकों ने 15 वर्षों तक अथक परिश्रम किया तथा निर्माण में साढे बारह करोड़ रुपये की लागत आई। रचना की दृष्टि से यह मन्दिर विमलशाही मन्दिर के ही समान है, लेकिन आकार अपेक्षाकृत छोटा है। स्थापत्य कला की दृष्टि से यह मन्दिर भी उत्कृष्ट श्रेणी का है। इसके गर्भगृह में जैन तीर्थंकर नेमीनाथ की काले रंग की प्रतिमा स्थापित है। गर्भगृह के प्रवेशद्वार के दोनों ओर देवरानी एवं जेठानी के दो आले बने हुए हैं, जिनमें तीर्थंकर आदिनाथ एवं शान्तिनाथ की प्रतिमाएं लगी हुई है। ये दोनों ही आले शिल्पकला की दृष्टि से अद्भुत हैं।

इसके प्रदक्षिणापथ में 52 कुलिकाएं हैं, जिसमें विभिन्न तीर्थंकरों की प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं तथा इनके सामने छतों पर पुष्प, हाथी, घोड़ें, पालकी, हंस, अम्बिका देवी, नर्तकियों, सैनिकों एवं भगवान नेमीनाथ के जीवन से सम्बन्धित प्रसंगों का अंकन अत्यन्त कुशलता के साथ किया गया है।

रंगमण्डप की छत का अलंकरण विस्मयकारी है। छत के मध्य में अलंकृत दण्ड बहुत ही आकर्षक लगता है। स्तम्भ शीर्ष पर 16 विद्या देवियों की खड़ी हुई स्थिति में सुन्दर प्रतिमाओं को बनाया गया है। रंगमण्डप में इन्द्र एवं कृष्ण लीला से सम्बन्धित दृश्यों तथा 68 नर्तकियों की आकृतियों का उत्कीर्णन अत्यन्त मनोहारी है। मण्डप की छत पर तीर्थंकरों की आकृतियाँ भी उत्कीर्ण हैं। (चित्र संख्या–2)

पीतलहर मन्दिर (ऋषभ देव मन्दिर) :–इसका निर्माण 1374 ई. से 1433 ई. के मध्य गुजरात के भामाशाह ने करवाया था। यह मन्दिर प्रथम जैन तीर्थकर ऋषभदेव या आदिनाथ को समर्पित किया गया है। मन्दिर में स्थापित भगवान आदिनाथ की प्रतिमा पंच धातु की बनी हुई है, लेकिन इसमें मुख्य रूप से पीतल का उपयोग होने के कारण इसे पीतलहर नाम से जाना जाता है।

पार्श्वनाथ मन्दिर :–यह विशाल मन्दिर तीन मंजिला है। इसका मन्दिर निर्माण मण्डलिक एवं उसके परिवार के लोगों ने 1458–59 ई. में करवाया था। यह मन्दिर 23वें जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ को समर्पित है। गर्भगृह की चारों दिशाओं में चार विशाल मण्डप बने हुए है, जिनके सामने संगमरमर से बनी पार्श्वनाथ की प्रतिमा स्थापित है। बलुआ पत्थर से बने इस मन्दिर के गर्भगृह की बाहरी दिवारों पर यक्षिणियों, दिक्पालों, विद्यादेवियों एवं स्त्रियों की आकर्षक शिल्पकृतियाँ बनी हुई है।

महावीर स्वामी मन्दिर :–इसका निर्माण 1582 ई. में करवाया गया था। देलवाड़ा के पाँच जैन मन्दिरों के समूह में यह मन्दिर सबसे छोटा एवं सामान्य प्रकार का है। यह मन्दिर अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी को समर्पित है।

रणकपुर :–

जैन धर्मावलम्बियों के पाँच प्रमुख धर्म स्थलों में एक रणकपुर भी है। यह स्थान पश्चिमी मारवाड़ के पाली जिले में सादड़ी गाँव से 8 किमी दूरी पर स्थित है। इस स्थान का नाम राणा कुम्भा के नाम पर रणपुर रखा गया था, जो वर्तमान में रणकपुर के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ के प्राचीन जैन मन्दिर अपनी स्थापत्य एवं मूर्तिकला के लिए विश्वविख्यात है। महाराणा कुम्भा के शासन काल में वास्तुकला को अत्यधिक प्रोत्साहन एवं संरक्षण प्राप्त था। उन्हीं के शासन काल में (15वीं शताब्दी में) इन अलंकृत स्तम्भों वाले अद्भुत जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ था। (चित्र संख्या–3) रणकपुर में ही आठवीं शताब्दी का एक सूर्य मन्दिर भी स्थित है। इन मन्दिरों में सबसे

चित्र संख्या–3 रणकपुर

प्रमुख मन्दिर चौमुखा मन्दिर है। इनके अलावा यहाँ तीर्थंकर पार्श्वनाथ एवं नेमीनाथ के दो छोटे मन्दिर भी स्थित हैं।

आदिनाथ मन्दिर या चौमुखा मन्दिर :–

इस मन्दिर की स्थापना 1439 ई. में हुई थी तथा इसके निर्माण में 50 वर्षों से भी अधिक समय लगा था। यह मन्दिर आकर्षक एवं विशाल (48400 वर्गफीट) है, जिसके निर्माण में उस समय लगभग 99 लाख रुपये की लागत आने का अनुमान लगाया जाता है। इसे आचार्य सोमसुन्दर सूरीजी की प्रेरणा से धरणाशाह एवं रत्नाशाह नामक भाइयों ने बनवाया था। मन्दिर का निर्माण कार्य देपाक नामक मुख्य शिल्पी के मार्गदर्शन में सैकड़ों सिद्धहस्त शिल्पियों ने निरन्तर अथक परिश्रम के परिणामस्वरूप विक्रम सम्वत् 1496 में सम्पन्न हुआ था। इसकी दीवारों के लिए सोनाणा का पत्थर व आधार तल के लिए सेवादी का पत्थर तथा कुछ विशिष्ट मूर्तियों को बनाने के लिए बाहर से भी पत्थर मंगवाया गया था। चौमुखा मन्दिर को आदिनाथ मन्दिर, त्रैलोक्य दीपक, त्रिभुवन विहार, धरण विहार, खम्भों का अजायबघर आदि नामों से भी जाना जाता है।

इस तिमंजिला मन्दिर की चारों दिशाओं में चार कलात्मक प्रवेश द्वार हैं। प्रवेश द्वार से अंदर आने पर सभामण्डप व मेघनाद मण्डप आते हैं। इस मन्दिर में कुल 24 मण्डप, 85 शिखर एवं 1444 अलंकृत स्तम्भ कला की उत्कृष्टता का बखान करते प्रतीत होते हैं। यह मन्दिर प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ को समर्पित है। अतः इसके गर्भगृह में आदिनाथ (ऋषभदेव) की 4 प्रतिमाएं चारों दिशाओं की ओर उन्मुख होती हुई स्थापित हैं। आदिनाथ की ये आसीन प्रतिमाएं विशाल हैं तथा संगमरमर की बनी हुई हैं। अतः इस मन्दिर को चतुर्मुख मन्दिर या चौमुखा मन्दिर के नाम से भी जाना जाता है। यह मन्दिर वास्तुकला एवं मूर्तिकला का एक अद्भुत उदाहरण है। इसके भीतरी भाग में अलंकृत तोरण द्वार, कलात्मक मण्डप एवं देवकुलिकाओं में स्थित आकर्षक प्रतिमाएं, इस मन्दिर को एक आलौकिक स्वरूप प्रदान करती हैं। इसीलिए इस मन्दिर को 'त्रलोक्य दीपक' भी कहा जाता है।

इस मन्दिर की परिक्रमा में देव कुलिकाएं बनी हैं, जिनमें बनी प्रतिमाओं में शारीरिक सौन्दर्य, भावभंगिमाएं, प्रफुल्लित मुखमण्डल, तीक्ष्ण भौहें, बड़े नेत्र, अद्भुत केशविन्यास, क्षीण कटि, मनमोहक शारीरिक मुद्राएं, भावाभिव्यक्त हस्तमुद्राएं, पारदर्शी वस्त्र व कलात्मक आभूषणों के अंकन की उत्कृष्टता ने निर्जीव प्रस्तर में प्राणों की अनुभूति करवाई है। परिक्रमा पथ में उत्कीर्ण विभिन्न देवी–देवताओं की प्रतिमाओं में भावाभिव्यक्ति का सुन्दर एवं अद्भुत प्रदर्शन देखने को मिलता है। इन मूर्तिशिल्पों में विष्णु, सरस्वती, पशुपक्षियों एवं बेलबूटों का सुन्दर अंकन किया गया है। (चित्र संख्या–4) स्त्री को वेणी गुन्थते हुए, पैरों में घुंघरू बांधते हुए, पाँव में चुभे कांटे को निकालते हुए, संगीत में लीन, शिशु के साथ क्रीड़ा में मग्न एवं आभूषण सजाते हुए आदि स्वरूपों को विविध

चित्र संख्या–4 अलंकरण(रणकपुर)

भावभंगिमाओं के साथ मूर्तिशिल्पों में जीवन्त किया गया है।

रंग मण्डप (सभा मण्डप) के तौरणद्वारों में अत्यन्त सूक्ष्म तक्षण कार्य किया गया है। इसकी छत व गुम्बद कलात्मक विशिष्टता लिए हुए है। गुम्बद के परिधीय भाग में विभिन्न मुद्राओं व भावभंगिमाओं के साथ वाद्ययन्त्र बजाते हुए व नृत्यरत नारी आकृतियां एक घेरे में बनाई गई हैं। रंगमण्डप मे बेलबूटों, ज्यामितीय अलंकरणों व अद्‌भुत कलात्मक जालियों का प्रयोग बहुतायत से किया गया है। मण्डपों की छतों में लटकते हुए पाषाण झूमरों से मण्डप के सौंदर्य में अपार वृद्धि हुई है।

इस मन्दिर के 1444 खम्भें तत्कालीन तक्षण कला में शिल्पियों की कुशलता का दृढ प्रमाण देते हुए प्रतीत होते हैं। प्रत्येक स्तम्भ (खम्भे) के उत्कीर्ण अन्य स्तम्भों से भिन्न एवं उत्कृष्ट हैं। ये स्तम्भ मन्दिर में इस प्रकार से स्थापित है कि अराध्य तीर्थंकर आदिनाथ के दर्शन करने में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करते। सुन्दर नक्काशी युक्त ये स्तम्भ मन्दिर के कलात्मक सौन्दर्य का सबसे प्रमुख व आकर्षक भाग हैं।

विषयवस्तु की दृष्टि से यह मन्दिर काफी विविधता रखता है। इसमें जैन तीर्थकरों के अलावा भी अन्य देवी–देवताओं, यक्ष–यक्षिणी, वानर, किन्नर, नृत्यांगनाओं व जैन धर्म से सम्बन्धित दृश्यों आदि विषयवस्तुओं को साकार रूप प्रदान किया गया है। नारी आकृतियों में विभिन्न भावभंगिमाओं एवं शारीरिक मुद्राओं का अद्‌भुत एवं मनोहारी अंकन हुआ है। मंदिर की छत पर शिखरों की कतार मन्दिर की भव्यता व शिल्पकला के कौशल का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करती है। मन्दिर के भूतल में सुरक्षा की दृष्टि से कुछ कमरे भी बनवाये गये थे। मन्दिर का बहिरंग भाग मूर्तिशिल्प रहित है।

पार्श्वनाथ के छोटे मन्दिर बाहरी भाग पर खजुराहो जैसे श्रृंगारिक मूर्तिशिल्पों का अंकन देखा जा सकता है।

इस मन्दिर के मूर्तिशिल्प में नारी की क्लिष्ट मुद्राओं का अंकन किया गया है, जो अतिरंजनापूर्ण प्रतीत होती है।

किराडू :–

यह स्थल बाड़मेर से लगभग 40 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह राजस्थान के खजुराहों के नाम से भी प्रसिद्ध है। इतिहासकारों के अनुसार यहाँ के मन्दिरों का निर्माण 11वीं शताब्दी में परमार वंश के राजा दुलशालराज एवं उनके वंशजों ने करवाया था। (चित्र संख्या–5) यह स्थल पहले 'किराट कूप' के नाम से जाना जाता था। वर्तमान में यहाँ (किराडू में) पाँच मंदिरों की श्रृंखला के खंडहरनुमा एवं जर्जर स्थिति में अवशेष देखने को मिलते है। इस क्षेत्र में फैले अवशेषों से पता चलता है कि किराडू अपने समय का एक महत्त्वपूर्ण मूर्तिकला का केन्द्र रहा था। इसके साथ ही किराडू व्यापार एवं संस्कृति का भी समृद्ध केन्द्र था। यहाँ स्थित पाँच मन्दिरों के समूह में वैष्णव एवं शैव मन्दिर बने हैं, जिसमें अधिकांश भग्नावशेषों के रूप में ही उपलब्ध हैं। किराडू के मन्दिरों में सोमेश्वर मन्दिर सबसे बड़ा, आकर्षक, सुन्दर व भगवान शिव को समर्पित है। मारू–गुर्जर शैली के इस मन्दिर में गर्भगृह, सभा मण्डप, द्वार मण्डप एवं मूल प्रासाद बने हैं। सभा मण्डप की छत को आठ अलंकृत स्तम्भों ने धारण किया हुआ था, लेकिन वर्तमान में इनके भग्नावशेष ही देखे जा सकते हैं। ये स्तम्भ अष्ठकोणीय, लम्बे एवं अलंकरणों से सुसज्जित हैं। स्तम्भों पर घट पल्लव, मकरमुख, पत्रपल्ली एवं कीर्तिमुख आदि का अलंकरण कुशलता के साथ किया गया है। मन्दिर के गर्भगृह का अधिकांश भाग अब भी सुरक्षित है।

चित्र संख्या–5 किराडू

इस मन्दिर के विभिन्न भागों में हिन्दू देवी–देवताओं की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। काले एवं नीले रंग के पत्थरों पर हाथी, घोड़े तथा विभिन्न भाव भंगिमाओं के साथ नारी आकृतियों का उत्कीर्णन इस मन्दिर की कलात्मक उत्कृष्टता एवं कुशलता को दर्शाती हैं। मन्दिर की दीवारों व स्तम्भों पर कलात्मक नमूनों (मोटिफ) की भरमार देखने को मिलती है।

किराडू के मन्दिरों में विष्णु मन्दिर भी उल्लेखनीय है। यह मन्दिर 'सोमेश्वर मन्दिर' की अपेक्षाकृत आकार में छोटा है तथा भगवान विष्णु को समर्पित है। यह स्थापत्य एवं तक्षण कला की दृष्टि से काफी समृद्ध है।

किराडू के मन्दिरों में विषयवस्तु की दृष्टि ये हिन्दू देवी–देवता, रामायण एवं महाभारत के प्रसंग, हाथी, घोड़े, विभिन्न मुद्राओं में नारी, द्वारपाल, शिवगण, त्रिदेव–ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गंगा–यमुना एवं कलात्मक नमूनों को प्रमुखता से स्थान दिया गया है। ब्रह्मा–सावित्री, उमा–महेश्वर एवं लक्ष्मी–नारायण की प्रतिमाएँ काफी आकर्षक हैं।

ओसियाँ :–

यह स्थान जोधपुर से लगभग 57 किलोमीटर की दूरी पर दक्षिण–पश्चिम दिशा में स्थित है। यहाँ के जैन एवं ब्राह्मण मन्दिर उत्कृष्ट स्थापत्य एवं मूर्तिकला के लिये प्रसिद्ध हैं। यह स्थल ओसवाल जैनियों के मूल स्थान के रूप में भी महत्त्वपूर्ण है। आठवीं एवं नवीं शताब्दी में यह व्यापारियों और जैन व वैष्णव धर्मावलम्बियों का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ लगभग 16 हिन्दू एवं जैन मन्दिरों के अवशेष देखे जा सकते हैं। गुर्जर–प्रतिहार शैली में बने इन मन्दिरों में शिव, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा, अर्द्धनारीश्वर, महिषमर्दिनी, नवग्रह, कृष्ण, हरिहर, सचिया माता, भगवान महावीर, पीपला माता एवं दिक्कपाल आदि प्रमुख है। यहाँ के वैष्णव, जैन व शाक्त मन्दिरों में धार्मिक एकता, समन्वय एवं सौहार्द की झलक देखने को मिलती है। ये मन्दिर दो स्थलों पर केन्द्रित हैं। 8वीं–9वीं शताब्दी के मन्दिर ओसियाँ में तथा 10वीं–11वीं शताब्दी के मन्दिर ओसियाँ के निकट ही पूर्व दिशा में एक पहाड़ी पर स्थित है।

सचिया माता का मन्दिर– सचिया माता मन्दिर का निर्माण 1178 ई. में परमार शासक उपेन्द्र ने करवाया था। सचिया माता परमार शासकों की कुल देवी थी तथा ओसवाल जैन धर्मावलम्बियों की कुल देवी के रूप में भी जानी जाती है। यह मन्दिर ओसियाँ

चित्र संख्या–6 सचिया माता मंदिर

ग्राम के पास एक पहाड़ी पर बना हुआ है। इस मन्दिर तक पहुँचने के लिए बनी सीढ़ियों पर नौ तौरण द्वार बने हैं जो शक्ति के नौ रूपों को समर्पित हैं। मन्दिर के चारों ओर कई वैष्णव मन्दिर बने हुए हैं। मन्दिर परिसर में स्थित चण्डी मां मन्दिर, अम्बा माता मन्दिर व सूर्य मन्दिर भी दर्शनीय हैं। मन्दिर में उत्कीर्ण गणेश एवं दुर्गा की प्रतिमाएं दर्शकोंव श्रद्धालुओं को अपनी ओर आकर्षित करती है।

सचिया माता मन्दिर के मुख्य गर्भगृह में श्याम वर्ण की मां सचिया की प्रतिमा स्थापित है। गर्भगृह के सामने स्थित मण्डप में हवन कुण्ड भी बना है तथा शिखर पर स्वर्ण कलश एवं ध्वज सुशोभित है। मंदिर के दरवाजों पर पौराणिक एवं लोक कथाओं का अंकन किया गया है। मारू (गुर्जर–प्रतिहार) शैली में बना यह मन्दिर हिन्दू एवं जैन दोनों सम्प्रदायों के लिए एक प्रमुख पवित्र धार्मिक स्थल है।(चित्र संख्या–6)

पीपला माता मन्दिर :–10–11 वीं सदी में बना यह शाक्त मन्दिर सूर्य मन्दिर के पास ही स्थित है। इसके गर्भगृह में महिषमर्दिनी एवं कुबेर की प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। यहाँ 30 स्तम्भों का एक सभा भवन भी बना हुआ है। इसके शिखर का शीर्ष भाग भग्नावस्था में है। यह मन्दिर ऊँचें चबूतरे पर बना हुआ है।

जैन मन्दिर :–

ओसियाँ के जैन मन्दिरों में महावीर मन्दिर महत्त्वपूर्ण है। इस मन्दिर का निर्माण प्रतिहार नरेश वत्सराज (770–800ई.) ने 783 ई(आठवी शताब्दी) में करवाया था। यह मन्दिर अन्तिम जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी को समर्पित है। इसके मुख्य गर्भगृह में महावीर स्वामी की पद्मासन मुद्रा में स्वर्ण पर्त चढ़ी प्रतिमा (32 इन्च) स्थापित है, जिसके पार्श्व में दो

चित्र संख्या–7 जैन मंदिर ओसियां

काले संगमरमर से बनी पार्श्वनाथ के मूर्तिशिल्प भी दर्शनीय है। गर्भगृह के सामने सभा गृह एवं खुला मण्डप है। इस मन्दिर का तौरणद्वार अत्यन्त आकर्षक अलंकृत एवं भव्य बना हुआ है। मन्दिर के विभिन्न हिस्सों में जैन तीर्थंकरों, देवी देवताओं एवं यक्ष–यक्षिणियों को उत्कीर्ण देखा जा सकता है।

बलुआ पत्थर से बना यह मन्दिर कलात्मक रूप से अन्य मन्दिरों से उत्तम है तथा ओसियाँ के जैन मन्दिरों में सर्वाधिक सम्पूर्णता लिए हुए है।

वैष्णव मन्दिर – ओसियाँ के वैष्णव मन्दिरों में हरिहर एवं सूर्य मन्दिर महत्त्वपूर्ण हैं। (चित्र संख्या–7)

हरिहर मन्दिर :– यह तीन मन्दिरों का समूह है, जो हरिहर को समर्पित है। हरिहर स्वरूप भगवान विष्णु एवं शिव का समेकित रूप है। ये मन्दिर ऊँचे उठे हुए चबूतरे पर बने हैं। इनमें से दो मन्दिर 8वीं शताब्दी का तथा तीसरा मन्दिर 9वीं शताब्दी का बना हुआ है। स्थापत्य कला की दृष्टि से ये मन्दिर ओसियाँ के मन्दिरों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

सूर्य मन्दिर इस मन्दिर के मुख्य भागों में गर्भगृह, अन्तराल, प्रदक्षिणा पथ, सभामण्डल व द्वार मण्डप उल्लेखनीय हैं। जैसा कि नाम से ही प्रतीत होता है, यह मन्दिर भगवान सूर्य को समर्पित है लेकिन इस मन्दिर के गर्भगृह में कोई देव प्रतिमा स्थापित नहीं है। गर्भ गृह का प्रवेश द्वार अलंकरणों से परिपूर्ण है। जिसके सिरदल पर लक्ष्मीनारायण, ब्रह्मा, शिव, गणेश एवं कुबेर की प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। गर्भगृह के बाहर महिषमर्दिनी, सूर्य एवं गणेश की प्रतिमाएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। छत पर कमल पर लिपटे सर्पों की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। गर्भगृह के सामने स्तम्भयुक्त खुलामण्डप है। इस मन्दिर में शैव एवं वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बन्धित आकृतियों का उत्कीर्ण मुख्य रूप से किया गया है। यह मन्दिर भी एक ऊँचे चबूतरे पर बना है तथा इसके निर्माण में भी बलुआ पत्थर का उपयोग हुआ है।

आभानेरी :–

दौसा जिले के सिकन्दरा कस्बे से उत्तर की ओर तथा बाँदीकुई से सात किलोमीटर की दूरी पर आभानेरी नामक एक छोटा गाँव स्थित है। इसका पुरातन नाम 'आभा नगर' (चमकदार नगर) था। यह गुर्जर–प्रतिहार काल में कला का एक समृद्ध केन्द्र था। पुरातत्व विभाग को प्राप्त अवशेषों के अनुसार आभानेरी का इतिहास लगभग 3000 साल पुराना है। मिहिर भोज को राजा चाँद के नाम से भी जाना जाता है। राजा चाँद ने आभानेरी में कई अद्‌भुत एवं आकर्षक शिल्पाकृतियों का निर्माण करवाया था, जिनके कुछ अवशेष जयपुर एवं आमेर के संग्रहालयों में भी सुरक्षित है तथा शेष मूल स्थान पर स्थित हैं। यहाँ की स्थापत्य एवं शिल्पाकृतियों में आठवी–नवीं सदी का हर्षत माता का मन्दिर एवं चाँद बावड़ी प्रसिद्ध है। हर्षत माता के मन्दिर का निर्माण 8वीं–9वीं शताब्दी में चौहान वंशीय राजा चाँद ने करवाया था। यह मन्दिर 11वीं शताब्दी में महमूद गज़नवी (1021 ई. से 1026 ई.) के आक्रमण से क्षतिग्रस्त हुआ था। वर्तमान में उपस्थित मूर्तिशिल्पों व स्थापत्य के अवशेष भी अधिकांशतः भग्नावशेषों के रूप में ही मिलते हैं। इस मन्दिर का वर्तमान स्वरूप प्राचीन मन्दिर के भग्नावशेषों से ही पुनर्निर्मित किया गया है। जनश्रुति के अनुसार इस मन्दिर के गर्भगृह में हर्षत (अर्थात आनन्द की देवी) माता को प्रसन्न मुद्रा में नीलम के पत्थर से बनी लगभग 6 फीट ऊँचाई वाली प्रतिमा स्थापित थी। लेकिन सन् 1968 में यह प्रतिमा चोरी हो गई थी। यह मन्दिर एक ऊँचे चबूतरे पर बना है। वर्तमान में दोहरी जगती पर स्थित इस मन्दिर के गर्भगृह में सीमेन्ट व चूने का प्रयोग नहीं हुआ है, जो शिल्पकला की दृष्टि से उल्लेखनीय है। मन्दिर की ऊपरी जगती के चारों ओर ताखों में धार्मिक एवं लौकिक जीवन से सम्बन्धित दृश्यांकन किया हुआ है।

मन्दिर के विभिन्न भागों में महिषमर्दिनी, दुर्गा, पार्वती, अर्द्धनारीश्वर, शिव, विष्णु, सूर्य, भैरव, यक्ष–यक्षिणी, नाग–

नागिन, रति–कामदेव, प्रेमी युगल, समुद्र मन्थन आदि का मूर्तन हुआ है। शृंगाररत देवी दुर्गा की प्रतिमा आमेर संग्रहालय में संरक्षित है। इस प्रतिमा में देवी को दर्पण में निहारते हुए, सिन्दुर लगाते हुए एवं पैरों के घुंघरू ठीक करते हुए दिखाया गया है।

इस मन्दिर के सामने ही चाँद बावड़ी स्थित है, जिससे यह प्रतीत होता है कि भारतीय परम्परा एवं संस्कृति के अनुसार बावड़ी में व्यक्ति स्नान करने के पश्चात् ही शारीरिक रूप से स्वच्छ होकर मन की शुद्धि के लिए मन्दिर में प्रवेश करते थे।

चाँद बावड़ी :–इसका निर्माण 9वीं शताब्दी में राजा चाँद (मिहिर भोज) द्वारा करवाया गया था, जिसके कारण इसका नाम चाँद बावड़ी पड़ा। स्थापत्य कला की दृष्टि से यह एक अद्भुत नमूना है। यह बावड़ी विश्व में सबसे गहरी बावड़ी है जिसके ऊपर से नीचे तक पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। (चित्र संख्या–8) इस बावड़ी की चौड़ाई 35 मीटर तथा गहराई 19.5 मीटर है। इस बावड़ी में सीढ़ियों के 13 तल बने हैं तथा कुल 3500 सीढ़ियाँ हैं। ये सीढ़ियाँ बावड़ी के तीन ओर समरूप है तथा बावड़ी में एक ओर (चौथी तरफ) तीन मंजिलनुमा भवन निर्मित है। बावड़ी के भवनों में नृत्यकक्ष विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बावड़ी की सबसे नीचे की मंजिल पर दो ताखे बने हुए हैं जिनमें गणेश एवं महिषासुर मर्दिनी की प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। यहाँ एक 17 किलोमीटर लम्बी गुप्त सुरंग भी है। बावड़ी के चारों ओर स्तम्भयुक्त वर्गाकार बरामदे भी बने हुए है।

इस बावड़ी को अंधेरे व उजाले की बावड़ी के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि चाँदनी रात में इस बावड़ी का दृश्य चन्द्रमा के प्रकाश (चांदनी) में प्रकाशित होकर अद्भुत आभा उत्पन्न करता है।

आभानेरी के मन्दिर व मूर्तिशिल्पों की तक्षण कला में

चित्र संख्या–8 चाँद बावडी

चित्र संख्या–9 आभानेरी का एक शिल्प

महामारू शैली के दर्शन होते है। विषयवस्तु की दृष्टि से हिन्दू देवी देवताओं एवं लौकिक जीवन से सम्बन्धित घटनाओं को महत्व दिया गया है। (चित्र संख्या–9) देवी के विभिन्न रूपों एवं भाव भंगिमाओं का उत्कीर्ण भी आकर्षक है। स्थापत्य कला की दृष्टि से आभानेरी की बावड़िया अद्भुत है, जिनमें चाँद बावड़ी विश्व में स्थापत्य कला का अपनी श्रेणी में अद्वितीय नमूना है।

जगत (उदयपुर) :–

उदयपुर के दक्षिणपूर्व में लगभग 50 किलोमीटर की दूरी पर जगत नामक ऐतिहासिक ग्राम स्थित है। इस ग्राम में दसवीं शताब्दी का कलात्मक वैभव लिए हुए अम्बिका माता का मन्दिर है। जिस कलावधि में खजुराहों के लक्ष्मण मन्दिर का निर्माण हुआ, उसी समय इसका (अम्बिका माता का मन्दिर) निर्माण भी हुआ था। अम्बिका माता का यह मन्दिर जगत ग्राम में स्थित है। देवी दुर्गा को समर्पित यह मन्दिर मूर्तियों के खजाने की तरह प्रतीत होता है। इसी कारण इस मन्दिर को राजस्थान का खजुराहो भी कहा जाता है। मन्दिर के सभाग्रह के शिलालेख के अनुसार इसका जीर्णोद्धार विक्रम सम्वत् 1017 में गुहिल वंशीय शासक रावल अल्लाट या उनके पुत्र रावल नरवाहन के शासनकाल में वल्लुका के पुत्र सम्वापुरा नामक व्यक्ति ने करवाया था। मन्दिर परिसर चारों ओर से एक विशाल परकोटे से घिरा हुआ है। इस परिसर में मुख्य मन्दिर के अतिरिक्त एक छोटा मन्दिर भी है। मुख्य मन्दिर की पूर्व दिशा में 50 फीट की दूरी पर परकोटे से लगता हुआ एक प्रवेश मण्डप बना है। इसके प्रवेश द्वार स्तम्भों पर देवी की आकृतियों एव छत में समुद्रमन्थन का दृश्यांकन किया गया है। प्रवेश मण्डप के बाहरी हिस्से में प्रेमी युगल का अंकन भी देखा जा सकता है। यह प्रवेश मण्डप आकर्षक अलंकरण

चित्र संख्या–10 देव मूर्तियां (जगत, उदयपुर)

से युक्त है तथा इस मन्दिर को समकालीन अन्य मन्दिरों से एक अलग पहचान देता है। इस प्रवेश मण्डप की ऊँचाई लगभग 15 फीट है तथा इसके सामने की ओर के भाग में दिक्पाल एवं अप्सराएं उत्कीर्ण हैं। यह प्रवेश मण्डप छह गोलाकार स्तम्भों पर टिका हुआ है। प्रवेश मण्डप के अलंकरण में देवी वराही, नृत्यरत शिव, कमलपुष्प, कीर्तिमुख, घट–पल्लव, समुद्रमन्थन दृश्य एवं देवी के विभिन्न रूपों को प्रमुखता से स्थान दिया गया है। वराही की चार भुजाएं हैं तथा उनके हाथ में मछली व अस्त्र को दिखाया है। सभामण्डप एवं गर्भगृह की बाहरी दीवारों पर विभिन्न देवी देवताओं के बड़े मूर्तिशिल्पों में देवी दुर्गा के विभिन्न रूपों को प्राथमिकता देते हुए उत्कीर्ण किया गया है। सभा मण्डप के बाहरी भाग में दिक्पाल, अप्सराएँ, वीणाधारिणी सरस्वती, देवी दुर्गा के विभिन्न स्वरूप व अन्य देवी–देवताओं को जीवंत स्वरूप में मूर्तियों में ढ़ाला है। (चित्र संख्या 10) मन्दिर के पार्श्व भाग में महिषमर्दिनी, बाएं भाग में नृत्यरत गणपति तथा उत्तर व दक्षिण की ओर वाली दीवारों पर देवी अम्बिका की विभिन्न मुद्राओं व भाव भंगिमाओं का मूर्तन उल्लेखनीय है। महिषमर्दिनी मूर्तिशिल्प में देवी दुर्गा को महिषासुर का मर्दन (मारते हुए) करते हुए दिखाया गया है। देवी अस्त्र–शस्त्र से सुसज्जित है तथा भैंसे के रूप में महिषासुर की गर्दन को काटकर धड़ से अलग कर दिया गया है।

बाड़ोली :–

बाड़ोली कोटा से लगभग 50 किलोमीटर दक्षिण में चित्तौडगढ़ जिले में रावतभाटा कस्बे के पास स्थित है। यहाँ पर 8वीं से 12वींशताब्दी के मन्दिर एक समूह के रूप में विद्यमान हैं। इस मन्दिर समूह में नौ षैव मन्दिर बने हैं, जिसमें शिव, विष्णु, त्रिमूर्ति, वामन, महिषमर्दिनी एवं गणेष के मन्दिर प्रमुख है। इन मन्दिरों को सबसे पहले प्रकाश में लाने का श्रेय जैम्स टॉड (1821 ई.) को दिया जाता है।

ये सभी मन्दिर बिना जगती एवं बिना प्रदक्षिणा पथ के हैं। स्थापत्य कला की दृष्टि से इन मन्दिरों को गर्भगृह, अन्तराल, मुखमण्डप एवं षिखर में विभेदित किया जा सकता है। इनकी आन्तरिक दीवारों पर अलंकरण का अभाव है। वास्तु एवं अलंकरण के अध्ययन के आधार पर इन मन्दिरों को तीन समूहों में बांटा जा सकता है–

प्रथम समूह में 9वीं शताब्दी में बने मन्दिर संख्या–1 एवं मन्दिर संख्या–8 को,

द्वितीय समूह में 10वीं शताब्दी में बने मन्दिर संख्या–4, मन्दिर संख्या–5, मन्दिर संख्या–6 एवं मन्दिर संख्या–7 को तथा तृतीय समूह में 10वीं एवं 11वीं शताब्दी में बने मन्दिर संख्या–2, मन्दिर संख्या–3 व मन्दिर संख्या–9 को रखा जा सकता है।

स्थान व स्थिति की दृष्टि से इन नौ मन्दिरों में से 8 मन्दिर दो समूहों में तथा एक मन्दिर उत्तर–पूर्व में लगभग आधा किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इन सभी मन्दिरों में घटेश्वर शिवालय सबसे प्रमुख एवं प्रसिद्ध मन्दिर है। (चित्र संख्या–11)

यहाँ के अभिलेखों के अनुसार यह मन्दिर झरेश्वर का है। सम्भवतः इसी का अपभ्रंश रूप घटेश्वर के रूप में सामने आया होगा। मन्दिर में स्थित शिवलिंग की आकृति घट के समान होने के कारण भी यह सम्भव है कि इस मन्दिर का नाम घटेश्वर पड़ा हो। घटेश्वर नाम से प्रसिद्ध यह मन्दिर बाड़ोली के मन्दिरों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस मन्दिर को मुख्यतः गर्भगृह, अर्धमण्डप, अंतराल एवं रंगमण्डप (शृंगार चौरी) में विभेदित किया जा सकता है। पूर्वाभिमुख इस मन्दिर के गर्भगृह में पाँच शिवलिंग स्थापित हैं।

चित्र संख्या–11घटेश्वर मंदिर

गर्भगृह के प्रवेश द्वार के सिरदल पर शिव नटराज तथा द्वार के दोनों ओर शैव द्वारपाल के मूर्तिशिल्प बनाएं गए हैं। गर्भगृह की बाहरी दीवारों पर बने मुख्य ताखों में नटराज, चामुण्डा एवं त्रिपरान्तक की प्रतिमाएँ बनी हुई है। ये सभी तथ्य इस मन्दिर के शिवालय होने का प्रमाण देते हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. राजस्थान में मूर्तिकला एवं मंदिर स्थापत्य कला की दृष्टि से मध्यमिका, रंगमहल, नोह, नांद, मालव नगर, आभानेरी, अटरू, लाडनूं, ओसियाँ, देलवाड़ा, रणकपुर, किराडू, जगत, बाड़ोली, पल्लू आदि महत्वपूर्ण स्थल हैं।
2. देलवाड़ा के पाँच जैन मन्दिरों के समूहों में विमलशाही एवं लूणवसही मंदिर प्रमुख हैं।
3. रणकपुर के जैन मंदिरों में चौमुखा मंदिर भगवान आदिनाथ या ऋषभदेव को समर्पित है।
4. किराडू के मंदिरों के भग्नावषेषों से पता चलता है कि यहाँ पाँच मंदिर गुर्जर–मारू शैली में बने थे, जिनमें सोमेश्वर मंदिर प्रमुख है।
5. ओसियाँ में जैन एवं वैष्णव धर्म से सम्बन्धित आठवीं व ग्यारहवीं शताब्दी में बने कई मंदिर स्थित हैं। ओसियाँ के मंदिरों में सचिया माता का मंदिर एवं महावीर मंदिर कलात्मक दृष्टिकोण से प्रमुख हैं।
6. आभानेरी में हर्षत माता के मंदिर व चाँद बावड़ी का निर्माण राजा चाँद ने नवीं शताब्दी में करवाया था।
7. उदयपुर जिले के जगत ग्राम में अम्बिका माता का मंदिर स्थित है, जिसमें देवी प्रतिमाओं का प्रमुखता से उत्कीर्णन किया गया है।
8. बाड़ोली (रावत भाटा के पास) में नौ शैव धर्म से सम्बन्धित मंदिर बने हैं, जिनका निमार्ण आठवीं से बारहवीं शताब्दी में हुआ था। इनमें मंदिर संख्या सात (घटेश्वर मंदिर) सबसे प्रमुख है।
9. सातवीं शताब्दी से पहले के मंदिरों के केवल अवषेष मात्र ही शेष बचे हैं। इसके बाद मुख्यतः गुर्जर–प्रतिहार या मारू–गुर्जर क्षेत्रीय शैली में मन्दिरों का निर्माण हुआ। इनमें अलंकृत स्तम्भ एवं ऊँची पीठिका का निर्माण देखने को मिलता है।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

प्र.1 हर्षत माता का मन्दिर किस स्थान पर स्थित है ?

प्र.2 चौमुखा मन्दिर किसे समर्पित है ?

प्र.3 किस मन्दिर के गर्भगृह के प्रवेश द्वार के दोनों ओर देवरानी व जैठानी के दो आले बने हुए है?

प्र.4 बाड़ोली के मन्दिरों में सबसे प्रमुख मन्दिर कौनसा है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्र.1 चाँद बावड़ी की प्रमुख विशेषताएं लिखिए।

प्र.2 बाड़ोली के मन्दिर को वास्तु एवं अलंकरणों की विशिष्टताओं के आधार पर कितने समूहों में बांटा जा सकता है?

प्र.3 जगत मन्दिर की प्रमुख कलागत विशेषताएं लिखिए।

प्र.4 किराडू के मन्दिर स्थापत्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

प्र.5 अम्बिका माता मन्दिर के मूर्तिशिल्प 'महिषमर्दिनी' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

प्र.6 घटेश्वर मन्दिर कहाँ स्थित है ?इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

प्र.1 देलवाड़ा के जैन मन्दिरों का संक्षिप्त परिचय देते हुए किसी एक मन्दिर के स्थापत्य एवं मूर्तिशिल्प का विस्तार से वर्णन कीजिए।

प्र.2 रणकपुर के चौमुखा मन्दिर का सविस्तार वर्णन कीजिए।

प्र.3 ''ओसियाँ के मन्दिरों में वैष्णव, जैन एवं शाक्त मन्दिरों के रूप में धार्मिक सहिष्णुता व एकता की झलक देखने को मिलती है।'' इस संदर्भ में अपने विचार लिखिए।